International Journal of Sanskrit Research 2017; 3(5): 47-50

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2017; 3(5): 47-50
© 2017 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 10-07-2017
Accepted: 11-08-2017

डॉ. इन्दुमती सिंह
पूर्व शोध छात्रा, संस्कृत एवं प्राकृत भाषा विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, उत्तर प्रदेश, भारत

Correspondence
डॉ. इन्दुमती सिंह
पूर्व शोध छात्रा, संस्कृत एवं प्राकृत भाषा विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, उत्तर प्रदेश, भारत

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम का त्यागपूर्ण जीवन चरित्र

डॉ. इन्दुमती सिंह

प्रस्तावना

श्रीराम साक्षात् परम् ब्रह्म परमात्मा हैं। ''जेहि दिन पिआरे वेद पुकारे द्रवउ सो श्री भगवाना।''[1] अपने भक्तों के उद्धार एवं धर्म की रक्षा के लिए धराधाम पर अवतीर्ण होते हैं। इतना ही नहीं वाल्मीकि रामायण के अनुसार मानवमात्र को मानवीय गुणों की शिक्षा देने के लिए अवतीर्ण होते हैं। स्वयं श्रीराम कहते हैं – मर्त्यावतास्य तुहि मर्त्यशिक्षणम् रक्षोबधाय न च केवलम् विभो।'' यद्यपि कि श्रीराम लोगों के समक्ष कभी भी स्वयं को ब्रह्म के रूप में परिभाषित न करते हुए सदा दशरथ पुत्र श्रीराम ही बताने का प्रयास करते हैं। प्रभु श्रीराम का प्रत्येक जीवन चरित्र अनुकरणीय है।

श्रीराम के दो रूप हैं – प्रथम रूप परब्रह्म का है। वे मन वाणी से अगोचर हैं। वेद उन्हें नेति–नेति कहता है। वे अनुभवगम्य हैं। इसका योगीजन समाधि में करते हैं। यह विचार का विषय है। इसमें तर्क–वितर्क नहीं किया जा सकता –

> राम अतर्क्य बुद्धि मन बानी। मत हमार अस सुनहि सयानी।।

किन्तु यदि सद्गुरु की कृपा हो जाय तो अगोचर ब्रह्म निर्गुण निराकर परमत्मा सगुण साकार भी हो जाता है। परन्तु जीव में उस ब्रह्म को जानने की जिज्ञासा, हृदय में छटपटाहट होनी चाहिए। जनकपुर में श्रीराम के प्रथम दर्शन में ही योगी राज जनक ब्रह्मानुभूति करते हुए विश्वामित्र की शरण में जाकर पूछते हैं। और मुनिवर ब्रह्म साक्षात्कार भी कराना चाहते हैं।

> ब्रह्म जो निगम नेति कहि गावा। उभय वेष धरि की सोइआवा।
> ताते प्रभु पूछहें सतिभाऊ। कहहुं नाथ जनि करहुं दुराऊ।।
> ये प्रिय सबहि जहाँ लगि प्रानी। मन मुसुकाहि राम सुनि बानी।।[3]

यहाँ पर भी जैसे ही विश्वामित्र जी ब्रह्म होने का परिचय देना चाहते हैं तब तक श्रीराम मुस्करा दिये और जब परमात्मा हँसता है तो जीवात्मा फंसता है और मुनिवर परिचय देते हैं –

> रघुकुल मनि दशरथ के जाए। मम हित लागि नरेश पठाए।।

श्रीराम का दूसरा रूप पुरुषोत्तम का है। नर–रूप धारण करके उन्होंने अनेक मानवीय लीलाएं की है। उन्होंने मानव–चरित्र का सर्वोत्तम आदर्श उपस्थित किया है। 'ईशावास्योपनिष्द्' के प्रथम मंत्र में संसार की भौतिक वस्तुओं के उपयोग की स्वतंत्रता के साथ एक अत्यन्त निषेधात्मक शर्त भी लगा दी गयी है।

> तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः, मा गृधः, कस्यस्विद् धनम्।

अर्थात् भोग करो, त्याग भाव से करो। किसी दूसरे के धन पर मत ललचाओ, जो दूसरे के उपभोग की वस्तु है, उसका उपभोग करने का विचार मत करो। कैवल्योपनिषद् में कहा गया है कि कर्म से नहीं, प्रजा से नहीं, धन से नहीं, त्याग से कोई–कोई अमृतत्त्व को प्राप्त होते हैं –

> न कर्मणा, न प्रजया धनेन त्यागेनैके अमृतत्त्वमानशुः।

भारतीय धर्म की यह विशेषता है कि उसने त्याग का वास्तविक मूल्य जानकार मनुष्यों से त्याग का आचरण कराने के लिए एक ऐसी अपूर्व सामाजिक पद्धति चला दी है कि उसका अनुकरण कर सभी

मनुष्य लाभान्वित हो सकते हैं। मोक्ष अर्थात् दुःख की आत्यन्तिक निवृत्ति और परमानन्द यदि कोई चाहता है, तो उसे त्याग का आश्रय लेना होगा।
ईसा ने अपने शिष्यों से कहा कि सब कुछ छोड़ो और मेरे पीछे–पीछे चलो–

A bandon all and follow me.

श्रीराम ने नियम और त्याग का आदर्श स्थापित किया। इन्द्रियाँ इतनी अतृप्त हैं कि विषयों को भोगते–भोगते थकती नहीं। धर्म उनको नियम में रहने की सीख देता है। धर्म का उद्देश्य इन्द्रियों को भोग में प्रवृत्त करना नहीं, वरन् उसका लक्ष्य त्याग है। श्रीराम के जीवन का प्रधान तत्त्व त्याग है। उनका जीवन सार्वजनिक है। इसलिए सबके लिए उपयोगी है। उनमें नियम की दृढ़ता और त्याग की प्रबलता है। उनका जीवन त्यागमय है। वे जो करते हैं, दूसरों के लिए करते हैं। किसी को दुःखी करना उनके जीवन का उद्देश्य नहीं है। त्याग ही उनका आदर्श है। पन्द्रह वर्ष तक ही विवाह का चरित्र है और चौदह वर्ष का वन का चरित्र है। यही उन्तीस वर्ष का चरित्र राम–काव्य का मुख्य विषय रहा। इसके पश्चात् 11 हजार वर्ष तक उन्होंने राज्य किया। इसका कुछ वर्णन नहीं है। श्रीराम ने अपने राज्य के अधिकार को प्रसन्नता पूर्वक त्याग दिया। सर्वस्व त्यागकर क्षणभर में वनवासी बन गये। यही उनका महान आदर्श था। त्यागी–वैरागी राम के उसी रूप के उपासक हैं। वे जटा बढ़ाकर, भस्म लगाकर राम के उसी रूप को बनाते हैं और वनवासी श्रीराम का ध्यान करते हैं।
मता कैकेयी को पूर्ण विश्वास था कि श्रीराम मेरी आज्ञा को अस्वीकार नहीं कर सकते फिर भी श्रीराम से प्रतिज्ञा कराती है। ''यहाँ मैं ध्यान आकृष्ट करना चाहूँगी कि गोस्वामी तुलसीदास जी कैकेयी के विशेषण में ''*काई*'' शब्द का प्रयोग किया है।

> ''काई कुमति केकेयी केरी''।
> परी जासु फल विपति घनेरी।।[4]

काई नदियों, तालाबों में पाया जाने वाला एक तत्व है और गोस्वामी जी कैकेयी को 'काई' क्यों कहा, इसी जिज्ञासा से पूज्य स्वामी रामकमल दास जी महाराज (काशी) ने काई पर शोध करवाया। शोध करने वाले दिल्ली विश्वविद्यालय के प्रो. राधेश्याम जी ने पाया कि *'काई'* में किसी भी प्रकार का कोई विकार नहीं पाया जाता है बल्कि उसमें तीन गुण पाये जाते हैं – पहला यह कि 'काई' युक्त पानी पीने से उदर रोग ठीक होता है, दूसरा थोड़ी सी 'काई' युक्त पानी उबाल कर रखें तीन–तीन चम्मच प्रतिदिन पीने से कैंसर ठीक हो सकता है और तीसरा जिस नदी में काई होती है उसका पानी स्वच्छ और ठण्डा होता है। (''यह बात मैं स्वामी रामकमल दास जी से ही सुनी हूँ'') अर्थात रघुवंश रूपी सरोवर को स्वच्छ और शीतल बनाने के लिए केकेयी 'काई' समान है। वास्तव में श्रीराम को राम बनाने वाला, रामराज्य की स्थापना कराने वाला यदि कोई है तो वह कैकेयी है।
श्रीराम ने कहा कि आपने महाराज से जो कुछ माँगा है, उसे बतला दो। मैं उसके सम्पादन करने की प्रतिज्ञा करता हूँ। राम का सिद्धान्त है कि वह दो बात नहीं कहता –

> तद् ब्रूहि वचनं देवि राज्ञो यदभिकांक्षितम्।
> करिष्ये प्रतिजाने च रामोद्धिर्नाभिभाषते।।[5]

माता–पिता की आज्ञा को श्रेष्ठ समझकर तथा परिवार और समाज के सामूहिक हितों को श्रेष्ठ मानकर एवं वैयक्तिक स्वार्थों को तुच्छ मानकर एक उच्च आदर्श स्थापित करने हेतु श्रीराम ने वनगमन किया –

> सुनु जननी सोई सुत बड़गामी। जो पितु मातु वचन अनुरागी।।
> तनय मातु पितु तोषनिहारा। दुर्लभ जननि सकल संसारा।।
> मुनिगन मिलन बिसेषि वन सबहि भाँति हित मोर।
> तेहि महँ पितु आयसु बहुरि संमत जननी तोर।।
> भरत प्रानप्रिय पावहिं राजू। विधि सब विधि मोहि सन्मुख आजू।।
> जौ न जाउँ बन ऐसेहुँ काजा। प्रथम गनिअ मोहि मूढ़ समाजा।।[6]

श्रीराम ने मानवता के उच्च आदर्शों के लिए, जीवन के उच्च मूल्यों के लिए हाथ में आती हुई सत्ता को तृणवत् त्याग दिया। महाराज दशरथ ने कुल परम्परा अनुसार ज्येष्ठ पुत्र श्रीराम का राज्याभिषेक करने का निर्णय किया। श्रीराम पिता के धर्म संकट को देखकर उनके वचन की रक्षा के लिए राज्य–वैभव को छोड़कर वनवास के लिए तैयार हो गये। माता केकेयी के प्रति मन में कोई दुर्भाव लाए बिना राज्य–सिंहासन भाई भरत के लिए छोड़ दिया। राज्याभिषेक की बात सुनकर उन्हें न तो हर्ष हुआ और न विषाद। इस समय उनकी मनःस्थिति अत्यन्त उदात्त थी। उसकी स्थितप्रज्ञता, द्वन्द्वातीतता और समबुद्धियुक्तता समन्वित मुखारविंद की कांति दर्शनीय हैं।

> प्रसन्नतां या न गतभिषेकतस्तथा न मम्ले वनवास दुःखतः।
> मुखाम्बुजश्री रघुनन्दनस्य में सदास्तु सा मंजुलमंगलप्रदा।।[7]

भागवताकार के अनुसार सीता के हाथों के स्पर्श को भी सह सकने में असमर्थ 'पाणिस्पर्शाक्षामाभ्याम् (9/10/4) अतिसुकुमार चरणों से श्रीराम वन की ओर चल पड़े। गोस्वामी जी लिखते हैं –

> जौ जगदीश इन्हहि बनु दीन्हा। कस न सुमनमय मारगु कीन्हा।।

जिस समय श्रीभरत श्रीराम को मनाकर वापस अयोध्या लाने के लिए जा रहे थे। वन की कंकड़ीली, कंटीली भूमि को देखकर बोले माता पृथ्वी जब इस मार्ग से प्रभु जा रहे थे, उस समय आप यहाँ कंकड़–काँटों के स्थान पर कोमल भूमि, सुन्दर फूल भी तो उगा सकती थी। माता पृथ्वी ने कहा मैं भी यही चाहती थी किन्तु पुनः स्मरण आया कि श्रीराम परम ब्रह्म परमात्मा है उनसे अपने अवगुणों को कैसे छुपाऊँ, इसीलिए अपने अवगुणों को उनके चरणों में रख दी।
श्रीराम का वनवास उनकी सदाचार–निष्ठा की पराकाष्ठा है। भागवताकार लिखते हैं कि श्रीराम अपने पिता दशरथ जी के वचनों से देवताओं के लिए भी दुर्लभ और दुरस्त्यज राजलक्ष्मी को छोड़कर वन–वन घूमते फिरे –

> व्यक्त्वा सुदुस्त्यजसुरेप्सित राज्य लक्ष्मी, धर्मिष्ठ आर्यवचसा यद्गादरण्यम्।।[9]

गोस्वामी जी कहते हैं कि वसंत ऋतु में तोता जैसे अपने पंखों को छोड़कर सुन्दर लगता है, वैसे ही राज्योचित वस्त्रों को छोड़कर ढंकी हुई उनके अंगों की कांति और अच्छी लगने लगी। अयोध्या को निर्मोही होकर उन्होंने ऐसे छोड़ दिया, जैसे बटोही मार्ग के वृक्षों को छोड़कर आगे बढ़ता जाता है। पथिक जैसे रास्ते के साथियों को छोड़ देता है, वैसे ही अयोध्या के स्त्री–पुरुषों को उन्होंने त्याग दिया। पिता के राज्य पर पुत्र का स्वाभाविक अधिकार होता है, किन्तु बटोही की भाँति श्रीराम ने पिता के राज्य को भी छोड़ दिया –

> कीर के कागर ज्यों नृप–चीर विभूषन उप्पम अंगनि पाई।

> औध तजी मगवास के रुख ज्यों, पंथ के साथ ज्यों लोग लोगाई।
> संग सुबंधु पुनीत प्रिया मनो धर्म क्रिया धरि देह सुहाई।
> राजिवलोचन राम चले तजि बाप को राज बटाऊ की नाई।।[10]

श्रीराम को सत्ता का मोह नहीं था। वे सत्ता और राज्य के विस्तार को भी नहीं चाहते थे। बालि–वध के बाद राज्य उन्होंने सुग्रीव को दे दिया। रावण की मृत्यु के बाद लंका का राज्य स्वयं अधिग्रहण न करके विभीषण को दे दिया। एक महात्मा से एक बार सुना था कि जब श्रीराम ने विभीषण का तिलक किया तो किसी ने उनसे कहा कि यदि रावण शरणागत हुआ तो उसको क्या देंगे ? तब श्रीराम ने कहा कि उसे अयोध्या का राज्य दे देंगे और मैं आजीवन वन में निवास करूँगा। श्रीराम कहते हैं मुझे राज्य लेने की इच्छा नहीं है। मैं तो वन में निवास करूँगा। मैं केवल धन का उपासक होकर संसार में नहीं रहना चाहता –

> नाहमर्थपरोदेवि लोक मावस्तुमुत्सहे।[11]

लक्ष्मण का उत्साह, माता का अनुरोध, स्वजनों की हृदयव्यथा, पुरवासियों का आर्त्तनाद, प्रजा का उत्कट प्रेम, चित्रकूट में जाकर भरत का लौटाने का आग्रह उन्हें कर्त्तव्य पथ से विचलित न कर सका। हम उन्हें प्रत्येक अवस्था में शांत, गंभीर और पूर्ण धैर्यशाली पाते हैं। त्याग के प्रति निष्ठा रघुवंशियों की परम्परा रही है –

> त्यागाय सम्भृतार्थानाम्।[12]

किसी भी पदार्थ में अपनेपन की, अपने प्रभुत्व की भावना न पैदा होना त्याग की पराकाष्ठा है। महान आपत्ति आने पर भी धीरज का न डिगना, विपुल सम्पदाओं की प्राप्ति में अभियान को छू तक न जाना तथा उत्साह में कमी का न आना श्रीराम की विशेषता है। चित्रकूट में जब यह मालूम हुआ है कि भरत जी चतुरंगिणी सेना लेकर आ रहे हैं, जब लक्ष्मण ने क्रोधावेश में भरत जी को युद्ध में पराजित करने की प्रतिज्ञा कर डाली। तब श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा कि भरत का जो तुम अपकार करोगे, तो वह मेरा ही अपकार होगा। यदि तुम राज्य के लिए ऐसा कर रहे हो तो भरत को आने दो, मैं उनसे यह कह दूँगा कि लक्ष्मण को राज्य दे दें। भरत मेरी बात को अवश्य ही मान लेंगे।

श्रीराम को भोग–विलास के प्रति किंचित भी आसक्ति नहीं थी। राजा दशरथ का घर स्वाभाविक सुन्दर था। इन्द्र का महल भी उस घर की बराबरी नहीं कर सकता था। ऐसे सुन्दर उत्तमोत्तम भोगों के पदार्थों से युक्त भवन में सुन्दर दूध के फेन के समान मृदु और उज्जवल बिछौने पर श्री सीताराम शयन करते थे। वही श्रृंगेरपुर में कुश और पत्तों की साथरी पर सो रहे हैं –

> भूपति भवन सुभाय सुहावा। सुरपति सदनु न पटतर पावा।।
> मनिमय रचित चारू चौबारे। जनु रतिपति निज हाथ संवारे।।
> सुचि सुविचित्र सुभोगमय, सुमन सुगंध सुबास।
> पलंग मंजु मनि दीप जहँ, सब विधि सुफल सुपास।।
> विविध बसन उपधान तुराई। छीरफेन मृदु बिसद सुहाई।।
> तहँ सिय रामु सयन निसि करहीं। निज छवि रति मनोज मदुहरहीं।।
> तेसिय रामु साथरी सोए। श्रमित बसन बिन जाहिन जोए।।[13]

श्रीराम में अतुलनीय आधात्यमिक बल था। धर्मस्थ रूपक
उन्होंने सभी युद्धोपयोगी सुविधाओं से सम्पन्न रावण को तृणवत समझा। श्रीराम ने विभीषण से स्पष्ट कहा कि शौर्य, धैर्य, सत्य, शील, बल, विवेक, दम, परहित, क्षमा, कृपा, समता, ईश भजन, वैराग्य, सन्तोष, दान, बुद्धि, श्रेष्ठ विज्ञान, निर्मल, अचल मन, शम, यम, नियम ब्राह्मण एवं गुरुपूजन रूपीरथ वाला व्यक्ति संसाररूपी महा दुर्जेय शत्रु को भी जीत सकता है, रावण तो कुछ नहीं है। धर्मस्थ रूपक में जो सदाचार के चौबीस सूत्र वर्णित है, वे सभी श्रीराम में हैं, रावण में नहीं, इसीलिए शुक्राचार्य जी कहते हैं कि पृथ्वी पर श्रीराम के समान नीतिमान राजा नहीं हुआ –

> न राम संदृशों राजा पृथिव्यां नीतिमानभूत।।[14]

प्रजापालक श्रीराम ने स्वर्ण के समान शुद्ध अग्निपूत सीता को भी लोकनिंदा के कारण त्याग दिया। अंत में अपनी प्रतिज्ञा की रक्षा के लिए धर्मधुरंधर भाई लक्ष्मण को भी त्याग दिया –

> यज्ञान् स्वर्णमयी सीतां विधाय विपुलद्युतिः।[15]
> तीय सिरोमनि सीय तजी, जेहिं, पावक की कलुषाई दही है।
> धर्म धुरंधर बंधुतज्यो, पुर लोगनि की विधि बोलिकही है।[16]

आज के लोकनायक जो चिल्ला–ल्लिा कर आत्मप्रशंसा द्वारा रो–रोकर भिखारी की तरह जनता से वोट मांगते हैं और वोट प्राप्त करने के लिए हर श्रेष्ठ गुणों और व्यवस्था की हत करने में संकोच नहीं करते, किन्तु जनता उन्हें नकार देती है। वास्तविक लोकनायक श्रीराम की लोकप्रियता इस प्रकार थी –

> अस के जीवजन्तु जग माही। जैहि रघुनाथ प्रानप्रिय नाहीं।।
> बैरिउ राम बड़ाई करहीं।।[17]

वर्तमान काल में राजनीतिज्ञ सत्ता के पीछे पागल हैं। उसका अपना कोई स्थिर सिद्धान्त और आदर्श नहीं है। संसार का इतिहास इस बात का साक्षी है कि सत्ता और सिंहासन के लिए कितने रक्तरंजित काण्ड और युद्ध हुए हैं। औरंगजेब ने पिता शाहजहाँ को सात वर्ष तक कैद करके रखा। अजातशत्रु ने बिन्दुसार को बंदी बनाया था। सत्ता के लिए भाई–भाई में, पिता–पुत्र में शत्रुता पैदा हो गयी। पिता–पुत्र में, भाई–भाई में, चाचा–भतीजे में सत्ता के लिए संग्राम आज भी देखने को मिल रहा है। श्रीराम को काल्पनिक सिद्ध करने के लिए पूर्व सत्ताधारी सर्वोच्च न्यायलय में हलफनामा प्रस्तुत करते हैं। सत्ता के लिए वे हर–हथकंडा अपनाते हैं। ऐसे धुरंधर राजनीति विशेषज्ञों को श्रीराम के चरित्र से शिक्षा लेनी चाहिए। श्रीराम और भरत जी सत्ता को फुटबाल बना देते हैं श्रीराम कहते हैं – ''भरत प्रानप्रिय पावहिं राजू'' और भरत जी कहते हैं – ''संपति सब रघुपति कर आहीं।'' जब तक शासक एवं जनता में श्रीराम के त्याग की भावना नहीं आयेगी तब तक सुशासन (रामराज्य) की स्थापना नहीं किया जा सकता है। सिंहासन पर बैठते ही श्रीराम ने अपनी प्रजा से कहा वही मेरे लिए प्रिय होगा जो मेरे आदेशों का पालन करेगा। प्रजा ने पूछा आपका आदेश क्या है तो श्रीराम ने कहा –

> सोइ सेवक मम प्रियतम सोई। मम अनुशासन मानइ जोई।।
> जो अनीति कछु भाषौ भाई। तौ मोहि बरजहु भय बिसराई।।
> यह है श्रीराम का त्यागपूर्ण जीवन चरित्र।[18]

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मानस – 1 / 186 / छन्द – 14
2. मानस – 1 / 121 / 3
3. मानस – 1 / 296 / 2, 4, 7
4. मानस – 2 / .....

5. वा. रा. 2/18/20
6. मानस – 2/41/7–8 एवं 42/1–2
7. मानस – 2/1/मंगल श्लोक – 2
8. मानस – 2/12/4
9. श्रीमद् भागवत – 11/5/34
10. कवितावली – 2/1
11. अध्यात्म रामायण – 2/3/59
12. वा.रा. 2/19/20
13. मानस – 2/90/78, 91/1–3
14. वा.रा. – 6/80
15. शुक्रनीति – 5/57
16. कवितावली – 2/73/2
17. मानस – ....
18. मानस – 7/43/5–6